जनसत्ता

दोहरा रुख

आतंकी संगठन जैश-ए-मोहम्मद के प्रमुख मसूद अजहर को अंतरराष्ट्रीय आतंकवादियों की सूची में शामिल कराने के प्रयासों पर चीन ने जिस तरह अपनी वीटो-शक्ति का इस्तेमाल किया, वह उसका नया रुख नहीं है। हालांकि इस बात की आशंका पहले से थी कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस की ओर से पेश इस प्रस्ताव को पारित कराने के मामले में चीन सहयोग नहीं करेगा। इसके बावजूद हाल में जम्मू-कश्मीर के पुलवामा में हुए आतंकी हमले के दौरान सीआरपीएफ के बयालीस जवानों की जान जाने और जैश-ए-मोहम्मद की ओर से इस घटना की जिम्मेदारी लेने के बाद यह उम्मीद थी कि चीन वास्तविकता को ध्यान में रख कर इस बार अपने पुराने रुख से अलग फैसला लेगा। लेकिन इस प्रस्ताव के सामने आने पर चीन ने साफतौर पर कह दिया कि वह मसूद अजहर पर प्रतिबंध लगाने की अपील को समझने के लिए और समय चाहता है। सवाल है कि जैश-ए-मोहम्मद, मसूद अजहर या उसकी गतिविधियों के संबंध में अब क्या छिपा हुआ है कि उसे समझने के लिए चीन को अलग से कोशिश करनी पड़ेगी!

गौरतलब है कि यह चौथा मौका था जब संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में मसूद अजहर को अंतरराष्ट्रीय आतंकी घोषित करने लिए प्रस्ताव आया तो चीन ने अपनी वीटो शक्ति का इस्तेमाल कर उसे पारित नहीं होने दिया। अजहर मसूद के संगठन जैश-ए-मोहम्मद को करीब अठारह साल पहले ही आतंकी घोषित किया जा चुका है। यह समझना मुश्किल है कि चीन की नजर में आतंकवादी होने की परिभाषा क्या है और आखिर किन वजहों से वह वैश्विक मत को दरकिनार करके मसूद अजहर को लेकर इतना नरम रुख बनाए हुए है। क्या इसे आतंकवाद के मसले पर चीन के दोहरे रवैये के तौर पर नहीं देखा जाना चाहिए? कुछ समय पहले चीन के विदेश मंत्रालय के एक प्रवक्ता ने कहा था कि हम भारत के साथ आतंकवाद विरोधी और सुरक्षा सहयोग के मोर्चे को मजबूत करना चाहेंगे और दोनों देश मिल कर क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा के लिए काम करेंगे। सवाल है कि जिस व्यक्ति को तकनीकी रूप से अंतरराष्ट्रीय आतंकी घोषित कराने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के सदस्य अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस जैसे देश भी पहल कर रहे हैं, उसका बचाव करके चीन भारत के साथ आतंकवाद विरोध के किस मोर्चे को मजबूत करने की बात करना चाहता है?

गौरतलब है कि करीब डेढ़ साल पहले चीन के शियामेन ब्रिक्स सम्मेलन के घोषणा-पत्र में आतंकवाद के सभी रूपों की निंदा की गई थी। उसमें पाकिस्तान स्थित आतंकवादी संगठनों मसलन लश्कर-ए-तैयबा, जैश-ए-मोहम्मद और हक्कानी नेटवर्क का भी जिक्र किया गया था। तब निश्चित तौर पर ब्रिक्स सम्मेलन में पाकिस्तान स्थित ठिकानों से अपनी गतिविधियां चलाने वाले आतंकी संगठनों के खिलाफ निंदा को घोषणा-पत्र में शामिल कराने को भारत की कूटनीतिक कामयाबी के तौर पर देखा गया था। लेकिन यह भी सच है कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में मसूद अजहर के मसले पर कूटनीतिक प्रयासों को वांछित सफलता नहीं मिल सकी। लेकिन क्या यह विचित्र नहीं है कि जैश-ए-मोहम्मद नामक जिस संगठन को आतंकवादी बता कर निंदा करने के प्रस्ताव पर चीन ने सहमति जताई थी, उसके मुखिया को आतंकवादी घोषित कराने और प्रतिबंध लगाने की कोशिश को वह बाधित करता है? अगर चीन भारत के साथ सहयोग संबंध को मजबूत करने का दावा करता है, तो उसे आतंकवाद के मसले पर भारत की पीड़ा को भी समझने की कोशिश करनी होगी।

गंगा की गंदगी

गंगा को स्वच्छ और निर्मल बनाने के लिए करीब तीस साल पहले गंगा कार्ययोजना तैयार की गई थी। इस योजना के तहत अब तक अरबों रुपए खर्च किए जा चुके हैं पर स्थिति यह है कि गंगा दिन पर दिन गंदी ही होती गई है। मौजूदा सरकार ने गंगा की सफाई के लिए एक अलग से मंत्रालय गठित किया। गंगा को राष्ट्रीय नदी का दर्जा दिया गया है। पर इसकी सफाई को लेकर सरकारें कितनी संजीदा हैं, इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण के जवाब तलब करने पर राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन यानी एनएमसीजी ने हलफनामा दायर करके बताया कि उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल सरकारों ने समुचित जानकारियां उपलब्ध नहीं कराई हैं, जिससे दूसरे और तीसरे चरण यानी कानपुर से बक्सर और फिर बक्सर से गंगासागर तक की कार्ययोजना की रूपरेखा तैयार करने में मुश्किलें आ रही हैं। हरित अधिकरण ने इसके लिए एनएमसीजी को फटकार लगाई है। इसके साथ ही उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश सरकार को निर्देश दिया है कि वे प्रमुख स्थलों पर गंगा जल की गुणवत्ता की जानकारी हर महीने सार्वजनिक करें। हरित अधिकरण ऐसी फटकार पहले भी कई मौकों पर लगा चुका है, पर राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों के कार्य-व्यवहार में कोई खास बदलाव नजर नहीं आया है।

हालांकि हरित अधिकरण ने अपने ताजा निर्देश में सख्त टिप्पणी करते हुए कहा है कि एनएमसीजी का गठन गंगा के कायाकल्प के लिए किया गया है और राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों के साथ समन्वय उसकी जिम्मेदारी है। अब उसे कोई टाल-मटोल नहीं सुननी। अगर तीस अप्रैल तक गंगा कार्ययोजना की रूपरेखा पेश नहीं की गई तो वह सख्त कदम उठाने को बाध्य होगा। इसके लिए संबंधित राज्य सरकारों को पर्यावरण क्षति का भुगतान करना पड़ सकता है। देखना है, अधिकरण के इस सख्त रुख का राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन और राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों पर कितना और कैसा असर पड़ता है। प्रयाग में कुंभ के दौरान गंगा में मिलने वाली गंदगी को रोकने में बड़ी कामयाबी देखी गई। हरित अधिकरण ने कहा है कि वहां आजमाए गए तकनीकी उपायों का अध्ययन कर इस अभियान में लगे विशेषज्ञों से परामर्श लिया जा सकता है।

दरअसल, राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड नदियों की सफाई को लेकर कभी गंभीर नहीं दिखे। इसमें उनके टाल-मटोल भरे रवैए की कुछ वजहें दूसरी भी हो सकती हैं। गंगा की सफाई के लिए उन्हें न सिर्फ यह बताना होगा कि कहां-कहां किन स्रोतों से कचरा गंगा में आकर मिलता है, बल्कि उन स्रोतों को बंद कराने में भी सक्रिय भागीदारी करनी होगी। छिपी बात नहीं है कि गंगा के प्रदूषित होने का बड़ा कारण शहरों के रिहाइशी इलाकों से निकलने वाले जल-मल और औद्योगिक इकाइयों के रासायनिक कचरे को बिना शोधित किए गंगा में गिरने देना है। औद्योगिक इकाइयों को कई बार निर्देश जारी किए जा चुके हैं कि वे बिना शोधन के औद्योगिक कचरा नदियों में न मिलने दें। इसी तरह शहरी जल-मल के शोधन के लिए जगह-जगह जल-मल शोधन संयंत्र लगाए जाने चाहिए। मगर बड़ी औद्योगिक इकाइयों की राजनीतिक और प्रशासनिक नजदीकी के प्रभाव की वजह से प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड आंखें बंद किए रहते हैं। इसी तरह गंगा के तटों पर किए गए अतिक्रमण हटाने को लेकर मुश्किलें हैं। समझना मुश्किल है कि गंगा जैसी नदियों, जो लोगों की आस्था से जुड़ी हैं, उनमें कचरा मिलने से रोकना इतना मुश्किल क्यों बना हुआ है।

कल्पमेधा

पाप तो इतिहास के आरंभ काल से चला आ रहा है लेकिन उसकी उपासना हमने अभी शुरू की है।
-महात्मा गांधी

अरावली का संकट

अखिलेश आर्येंदु

अरावली पहाड़ियों को नष्ट करने के दुष्परिणाम हमारे सामने हैं। जिन क्षेत्रों से अरावली श्रृंखलाओं का विनाश हुआ उन क्षेत्रों में प्राकृतिक असंतुलन, पर्यावरण प्रदूषण, ऋतु-चक्र में बदलाव, जैविक विविधता की समाप्ति, इंसान में प्रकृति से मैत्री भाव का ह्रास, पाताल में रासायनिक विषैले तत्त्वों की वृद्धि, तेजी से गिरता भूजल स्तर, दुर्लभ वनस्पतियों का विनाश और मानवीय संवेदना में लगातार ह्रास जैसी गंभीर समस्याएं देखने को मिल रही हैं।

आठ मार्च को उच्चतम न्यायालय ने हरियाणा सरकार को अरावली वन क्षेत्र में किसी भी तरह की गतिविधियों के प्रति सचेत करते हुए चेतावनी दी कि अगर उसने निर्माण की अनुमति देने के लिए कानून में संशोधन कर अरावली की पहाड़ियों या वन क्षेत्र को कोई भी नुकसान पहुंचाया तो वह मुसीबत में होगी। गौरतलब है हरियाणा सरकार ने 27 फरवरी को कानून में संशोधन कर हजारों एकड़ भूमि क्षेत्र गैर वानिकी और रियल इस्टेट की गतिविधियों के लिए खोल दिया था। इसे लेकर पर्यावरण संरक्षकों में हलचल मच गई थी। अरावली पहाड़ियों के उजाड़ को रोकने के लिए पहला आदेश 7 मई 1992 को जारी किया गया था। राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली क्षेत्र में फैली अरावली की पहाड़ियों को खनन गतिविधियों से जो नुकसान पहुंचाया गया उससे कई तरह की समस्याएं पैदा हुई हैं। इससे कई दुर्लभ औषधियों-वनस्पतियों, जंगली जीव-जंतु और पक्षियों का तो अस्तित्व ही समाप्त हो गया।

अरावली के अस्तित्व को लेकर कुछ वर्षों से मीडिया, कोर्ट और पर्यावरण संरक्षकों में बहस छिड़ी हुई है। सुप्रीम कोर्ट पहले ही कह चुका था कि राजस्थान सरकार का कर्तव्य बनता है कि वह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण अरावली की पहाड़ियों की सुरक्षा सुनिश्चित करे और अवैध खनन पर तुरंत रोक लगाए। राजस्थान के उन्नीस जिलों में अरावली की पर्वत श्रृंखलाएं हैं जिनसे संपूर्ण क्षेत्र की जैविक विविधता बरकरार रही है। सुप्रीम कोर्ट ने वैध-अवैध दोनों तरीकों से खनन पर रोक लगाने के आदेश दिए थे। न्यायालय का कहना था कि रसूखदार खनन माफिया ने अरावली को ऐसा नुकसान पहुंचाया है जिसकी भरपाई कभी नहीं की जा सकती है। मौजूदा पीढ़ी के साथ ही आने वाली पीढ़ी को भी इस आत्मघाती कार्य का खमियाजा भुगतना पड़ेगा। अड़तीस अरावली पहाड़ियों का अस्तित्व ही अवैध खनन के चलते समाप्त हो गया है। राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और दिल्ली क्षेत्र में फैली इन पहाड़ियों पर पिछले चार दशकों से अवैध खनन जारी है।

अरावली पहाड़ियों का अस्सी फीसद हिस्सा राजस्थान में आता है। इसी तरह हरियाणा के गुड़गांव, फरीदाबाद, महेंद्रगढ़, मेवात और रेवाड़ी इलाके में ये फैली हुई हैं। दिल्ली व एनसीआर क्षेत्र के कई किलोमीटर में ये फैली हुई हैं जहां सालों से बजरी और पत्थर खोदने का अवैध कारोबार चल रहा है। वन विभाग की मंजूरी के चलते भी इन क्षेत्रों में वैध-अवैध खनन, निर्माण और पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करने जैसे कार्यों से पहाड़ियों को जबरदस्त नुकसान पहुंचाया गया। गौरतलब है कि अरावली में पत्थर खनन के लिए कुछ विशेष तरह के मापदंड तय किए गए थे, जिनमें जहां से जितना पत्थर निकाला जाए वहां मिट्टी से इसकी भरपूर भरपाई की जाने की शर्त थी। लेकिन चिंता की बात यह है कि पहाड़ियों को खोदा तो गया, लेकिन वहां जो गहरे गड्ढे हुए उनमें आवश्यकता के अनुसार मिट्टी नहीं डाली गई।

वृक्ष धरती के आभूषण हैं तो पहाड़ धरती के रक्षक। ये मानव को आंधी-तूफान और अन्य मौसमी व भौगोलिक संकटों से बचाने का कार्य भी करते हैं। लेकिन इंसान ने धन-संपत्ति के लोभ में पड़ कर इस महत्त्वपूर्ण विषय पर ध्यान ही नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि दुनियाभर में बर्फीले आंधी-तूफान, भूकम्प, सुनामी, वैश्विक तापमान, नई-नई बीमारियां, ऋतुचक्र में असंतुलन, रेगिस्तानी क्षेत्र का लगातार विस्तार जैसी नई-नई समस्याएं पैदा हो गईं। सबसे ज्यादा समस्याएं एशिया के देशों में पिछले चार दशकों में देखने में आई हैं।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूनेप) की रपट के मुताबिक दुनिया के सौ देशों में उपजाऊ या हरियाली वाली जमीन रेत के ढेर में बदलती जा रही है। यह खतरा बहुत बड़ा है जिसका असर दुनिया की एक अरब आबादी पर प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगा है। यह खतरा पहले से रेगिस्तान वाले क्षेत्रों से इतर है। इस वक्त सबसे अधिक रेगिस्तान एशियाई देशों में हैं। दूसरी ओर भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) का शोध कहता है कि थार का रेगिस्तान अब राजस्थान से निकल कर कई राज्यों में विस्तारित हो गया है। जो धूल पाकिस्तान व उससे लगे क्षेत्रों से उड़ती है उससे सुरक्षा का काम अरावली की पहाड़ियां ही करती आई हैं। पिछले चार दशकों में दिल्ली और एनसीआर में धूल भरी आंधी, तूफान और बेमौसम बरसात का जो सिलसिला शुरू हुआ है उसका सबसे बड़ा कारण अरावली की पहाड़ियों का खत्म होना है।

भारत के उन सभी क्षेत्रों में समस्याएं और संकट

लगातार बढ़ रहे हैं जहां विकास के नाम पर जल, जंगल और जमीन को आनन-फानन में समाप्त किया गया या किया जा रहा है। बंजर, रेगिस्तान, सूखे और दलदली क्षेत्रों का बढ़ना, नदियों के किनारे से लगातार अवैध खनन का बढ़ते जाना, पहाड़ों को काट कर नए निर्माण करते जाना जैसे अनेक कार्य हैं जिनसे जैविक विविधता को खतरा उत्पन्न हो गया है। जैविक विविधता को बनाए रखने के लिए कुछ भी नहीं किया जा रहा है, लेकिन इसको तहस-नहस करने के लिए रात-दिन विध्वंसकारी कार्य किए जा रहे हैं।

अरावली पहाड़ियों को नष्ट करने के जो दुष्परिणाम सामने आए हैं वे हमारे सामने हैं। जिन क्षेत्रों से अरावली श्रृंखलाओं का विनाश हुआ उन क्षेत्रों में प्राकृतिक असंतुलन, पर्यावरण प्रदूषण, ऋतु-चक्र में बदलाव, जैविक विविधता की समाप्ति, इंसान में प्रकृति से मैत्री भाव का ह्रास, पाताल में रासायनिक विषैले तत्त्वों की वृद्धि, तेजी से गिरता भूजल स्तर, दुर्लभ वनस्पतियों का विनाश और मानवीय संवेदना में लगातार ह्रास जैसी गंभीर समस्याएं देखने को मिल रही हैं। भारतीय समाज में प्रकृति की पूजा और सुरक्षा के प्रति असंवेदनशीलता, प्रकृति से छेड़छाड़ और प्रकृति से असहजता का व्यवहार पिछले चार-पांच दशकों में अधिक देखने को मिला है। जंगल, जमीन, जल, पहाड़, समुद्र, नदी, झीलें, बावड़ियां, पोखर, तालाब, ताल, तलैया, नहर और कुंओं के प्रति एक मैत्रीपूर्ण व्यवहार ही नहीं रहा है। वनस्पतियों, औषधियों, विशेष तरह के वृक्षों, कुंओं और नदियों की सुरक्षा के प्रति हर संवेदना खत्म हो गई है। इसका ही परिणाम है कि अरावली सहित अन्य पहाड़ियों को धन के लोभ के कारण काट-काट कर हमेशा के लिए खत्म कर दिया गया। यह प्रवृत्ति हमारी उस संवेदनशीलता के ठीक उलट है जिसमें प्रकृति के प्रति मैत्री, बंधुत्व, पारिवारिक रिश्ता, सुरक्षा और सहजता के भाव को सबसे उत्कृष्ट समझा जाता था।

पहाड़ जिस मानव सभ्यता के आधार और मित्र रहे हैं, उनके साथ दुश्मन से भी बदतर व्यवहार निश्चित ही भारतीय समाज की दुर्दशा का द्योतक है। हमें अरावली की पहाड़ियों के प्रति ही नहीं, बल्कि नदियों, झीलों, समुद्रों, जंगलों और तालाबों के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ाने की जरूरत है। वरना जिस तरह से प्राकृतिक संसाधनों के विनाश के कारण मानव सभ्यता के अस्तित्व पर खतरा मंडराता दिखाई पड़ रहा है, कुछ इसी तरह का खतरा पहाड़ों के उजड़ते जाने के कारण पैदा हो चुका है। हम उस खतरे से कितने वाकिफ हैं, हम प्राकृतिक विवधता के प्रति कितने संवेदनशील और जागृत हैं, इस पर सच्चे मन से समीक्षा करने की जरूरत है।

अरावली का करोड़ों वर्षों का इतिहास केवल चार दशकों के विनाशकारी कार्यों से बदल गया है। यह हमारी संस्कृति का विध्वंसकारी रूप है। हम पर्वत-समुद्र-नदी आदि को अपने पूज्यों में शामिल करते रहे हैं और हम उनकी उसी तरह से सुरक्षा, पूजा और उनके प्रति अपने स्वधर्म का पालन करते रहे हैं जैसे अपने माता-पिता और बड़ों के प्रति करते थे। हमारा चिंतन कभी विनाश का नहीं बल्कि विकास, प्रगति, उत्थान और मर्यादा पालन का रहा है। लेकिन आजादी के बाद हम केवल परिवार व समाज में ही अमर्यादित नहीं हुए, बल्कि प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के प्रति भी अमर्यादित हुए हैं। इसी का नतीजा आज अरावली भुगत रही है।

सोच का दायरा

नीलम सिंह

कुछ दिनों पहले बातचीत के दौरान एक सहयोगी ने कहा- 'मेरा शरीर मेरा अधिकार- यह क्या बकवास है!' उनके मुंह से यह बात सुन कर न केवल मैं हतप्रभ थी, बल्कि मेरे विद्यार्थी भी दंग रह गए। शायद इसलिए ज्यादा, कि वे शिक्षण के पेशे में थे। उन्होंने आगे कहा कि मेरे सामने स्त्री अस्मिता की बात मत करो। मैं इस सबमें विश्वास नहीं करता। स्त्री अस्मिता और उससे जुड़े अधिकारों की मांग उन्हें न केवल बेकार, बल्कि नाजायज लगती थी। उनका स्पष्ट मत था कि स्त्रियां अपनी 'सीमा-मर्यादा' में ही अच्छी लगती हैं। स्त्री अस्मिता उनके विचार से चरित्रहीन स्त्रियों की काम वासना की पूर्ति का हथियार भर था। उनकी बातों को सुन कर मुझे 'निर्भया' के बलात्कारी या उस जैसे लोगों की मानसिकता का अंदाजा हुआ जिसमें कहा जाता है कि 'अगर रात में दस बजे घर से बाहर निकलेगी तो यही होगा... अगर विरोध नहीं करती तो उसकी हत्या नहीं होती।' हालांकि 'निर्भया' का बलात्कारी एक अशिक्षित समाज से था और शिक्षा के अभाव में उसकी यह मानसिकता घटक अवश्य थी, मगर अविश्वसनीय नहीं, लेकिन जब इस तरह की मानसिकता स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय में शिक्षकों और विद्यार्थियों में दिखाई देती है तो यह घातक और शर्मनाक है।

दरअसल, सिमोन द बोउवा के बारे में पढ़ाने के दौरान 'मेरा शरीर मेरा अधिकार' जैसे विचारों पर चर्चा चल रही थी। चर्चा में एक सहयोगी शिक्षक भी कूद पड़े। उनके बोलने के ढंग से स्पष्ट था कि यह चर्चा उनकी पसंद से कोसों दूर थी। वे अपने विचारों में बड़े स्पष्ट थे। स्त्री अस्मिता के मसले पर सोचने-समझने के क्रम में इस तरह के कुछ अनुभवों ने मुझे अंदर से झकझोर दिया। शिक्षित समाज का अनुकरण समाज का हर वर्ग करता है। ऐसे में यह छोटी-सी चर्चा सोचने पर मजबूर करती है कि क्या वास्तव में शिक्षा के प्रभाव से हमारी सोच बदलती है! स्कूल, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय वे स्थान हैं, जहां शिक्षा, सोच, विचार और आधुनिकता पलती-बढ़ती है। यहां वे लोग रहते हैं, जिनका अनुकरण पूरा समाज करता है। परंपरागत रूप से गुरुजनों का समाज में विशेष आदर रहा है। कबीर ने तो गुरु को गोविंद के भी ऊपर बैठाया था, लेकिन जब गुरु ही विचारों से इस तरह हों तो हम विद्यार्थियों से क्या आशा रख सकते हैं! शिक्षित समाज अपनी जिम्मेदारी से विमुख हो जाए तो किसे दोषी ठहराएं।

दुनिया मेरे आगे

ऐसा नहीं कि महिला आंदोलनों ने इस दिशा में प्रयास नहीं किए। साहित्यिक और सामाजिक आंदोलनों ने 'स्त्री' को स्त्री होने के अहसास की जकड़न से मुक्त किया। सिमोन जब कहती हैं कि 'स्त्री पैदा नहीं होती, बना दी जाती है, तो वे उसी मानसिकता पर चोट करती हैं जो स्त्री को हमेशा स्त्री बने रहने के लिए प्रेरित करती है। स्त्री विमर्शों ने साफ तौर पर यह बात बताई है कि जन्म से ज्यादा परिस्थिति और व्यवहार उस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं जो स्त्रियों को दायरे में कैद कर उनका चरित्र गढ़ने का काम करती हैं। दुखद यह है कि इस प्रभुत्ववादी सोच ने समाज में स्त्रियों को भी ऐसा बना दिया है कि अब स्वयं वे स्त्री धर्म से बाहर आना नहीं चाहतीं। असुरक्षा के भाव की मारी स्त्री अपनी बेटी को चलना, उठना, बैठना, हंसना, कपड़े पहनना, अपने तन को पूरी तरह से ढंकना या फिर सीनेटरी नैपकिन खरीदने तक की शिक्षा देती है।

बड़ी बात यह है कि इस तरह की शिक्षा केवल घरों में नहीं दी जाती है, बल्कि स्कूलों, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों में भी दी जाती है। यहां केवल शिक्षा देने का तरीका बदल जाता है। मगर सच यह है कि जिन शिक्षण सस्थानों पर हमारी नजरें लगी रहती हैं, जहां से क्रांति की चिंगारी उठती है, उनमें भी महिला शिक्षक अपने पहनने-ओढ़ने, हंसने-बोलने पर टीका-टिप्पणी की शिकार होती हैं। 'चरित्रवान' और 'चरित्रहीन' की पहचान में नत्थी कर दी जाती है। उन पर कई तरह के अनर्गल आरोप लगाए जाने लगते हैं। कुल मिला कर पुरुष प्रभुत्ववादी सोच मानती है कि स्त्री खूबसूरत हो सकती है, बुद्धिमान नहीं। बुद्धि और ताकत पर तो केवल पुरुषों का एकाधिकार है। ऐसी मानसिकता वाले लोग यह मानने को कतई तैयार नहीं होते कि यह सोच न केवल उनकी ग्रंथियों को दर्शाती है, बल्कि उनके पिछड़े होने का भी सबूत है।

अफसोस यह है कि हर साल महिला दिवस जैसे अंतरराष्ट्रीय अवसर समाज को यह बताने-सिखाने की कोशिश करते हैं, लेकिन सच यह है कि जब हमारे समाज का शिक्षित तबका इस मसले पर सोचने और अपनी सामंती मानसिकता बदलने को तैयार नहीं होता तो परंपरागत मानसिकता में जीते साधारण लोगों पर क्या सवाल उठाया जाए! जरूरत इस बात की है कि अगर हम खुद को एक सभ्य समाज का हिस्सा मानना चाहते हैं तो हमें महिलाओं को पुरुषों के बराबर हैसियत में एक व्यक्ति मानना होगा। पुरुष प्रभुत्व वाले समाज में उसके छीने गए अधिकार उसे वापस लौटाने होंगे।

अनुभव का खेल

जिस तरह क्रिकेट अपने प्रारूप में सिमटता जा रहा है जैसे टैस्ट क्रिकेट से एकदिवसीय क्रिकेट, एकदिवसीय क्रिकेट से टी-20 क्रिकेट और फिर टी-20 से टी-10 क्रिकेट, उसी प्रकार दर्शक भी स्वभावतः अपने क्रिकेटीय नजरिये में सिमटते दिख रहे हैं। कोई एक मैच में अच्छा प्रदर्शन कर देता है तो हम उसे हीरो बना देते हैं और लंबे समय से खेलते आ रहे खिलाड़ियों से तुलना करने लगते हैं पर यह भूल जाते हैं कि जिससे तुलना कर रहे हैं उसके पास लंबा अनुभव होता है।

जहां तक विश्व कप के लिए भारतीय टीम में खिलाड़ियों के चयन का प्रश्न है तो स्थिति यह है कि देश में हर क्रिकेट प्रेमी प्रत्येक मैच में अपने नए हीरो के प्रदर्शन को देखने के बाद एक नई टीम सुझाने लगता है। अभी कुछ समय पहले यह चर्चा हर समीक्षक की जुबान पर थी कि 'धोनी का विश्व कप की टीम के लिए चयन किया जाना चाहिए या नहीं?' पर अब शायद इसका जवाब हर किसी को मिल गया है। इसी प्रकार की दबाव की स्थिति से सचिन तेंदुलकर को भी गुजरना पड़ा था जिसका जवाब उन्होंने 2011 के विश्व कप में भारत के लिए सर्वाधिक रनों का योगदान करते हुए दिया और विश्व कप जिताने में अहम भूमिका निभाई थी।

दरअसल, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रत्येक विश्व कप विजेता टीम में उसके अनुभवी खिलाड़ियों ने अहम भूमिका निभाई है। मसलन, 1975 और 1979 की विश्व कप विजेता टीमों में क्रमशः क्लाइव लायड और विवियन रिचर्ड ने वेस्टइंडीज के लिए, 1983 में मोहिंदर अमरनाथ और सुनील गावस्कर ने भारतीय टीम के लिए, 1987 में डेविड बून तथा एलेन बोडर ने ऑस्ट्रेलिया के लिए, 1992 में इमरान खान और जावेद मियांदाद ने पाकिस्तान के लिए, 1996 में अरविंद डिसिल्वा और अर्जुन रणतुंगा ने श्रीलंका के लिए,1999 में स्टीव वाग, 2003 में शेन वार्न और 2007 में विश्व ग्लेन मैकग्राथ ने ऑस्ट्रेलिया के लिए, 2011 में सचिन तेंदुलकर ने भारत के लिए और 2015 में माइकल क्लार्क ने ऑस्ट्रेलिया के लिए अहम भूमिका निभाई है।

इससे यही कहा जा सकता है कि अनुभवी खिलाड़ियों की मौजूदगी से टीम के अन्य खिलाड़ियों का भी प्रदर्शन ऊंचा हो जाता है क्योंकि सीनियर खिलाड़ी जहां अपने अनुभव और खेल से पूरी टीम को अच्छा प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित करते हैं वहीं युवा खिलाड़ी भी अपनी चुस्ती-फुर्ती और जोश से टीम को सदैव ऊर्जा से भरते हैं। अनुभवी खिलाड़ियों को नजरअंदाज करके केवल युवा कंधों पर विश्व कप जिताने की जिम्मेदारी देना उचित नहीं होगा।

● *अभिषेक कुमार मिश्रा, इलाहाबाद*

विदेशों में उसके खाते जब्त होते और अंतरराष्ट्रीय यात्राओं पर रोक लगती। अभी कौन सा वह दुनिया भर में घूमता रहता है! दरअसल, जब तक पाकिस्तानी अवाम और वहां की हुकूमत उसके साथ है भारत का सरदर्द कम नहीं होने वाला। भारत को अब यह अच्छी तरह समझना होगा कि हमारा सबसे बड़ा दुश्मन चीन है न कि पाकिस्तान। भारत का दावा है कि सुरक्षा परिषद के स्थायी और अस्थायी सदस्य देश भारत के साथ खड़े हैं। तो क्या हम अमेरिका से यह आग्रह नहीं कर सकते कि वह अपनी ओर से पाकिस्तान पर प्रतिबंध लगाए जैसे उसने ईरान पर नकेल कसी है! इसमें संयुक्त राष्ट्र की सहमति भी नहीं थी। मगर अमेरिका ऐसा नहीं करेगा। हमें अपनी लड़ाई खुद से लड़नी होगी।

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

आम बनाम खास

आंध्रप्रदेश स्थित विश्व प्रसिद्ध मंदिर तिरुपति बालाजी में वीआइपी दर्शन की व्यवस्था खत्म कर दी गई है। देर से ही सही, पर मंदिर प्रशासन का यह निर्णय सराहनीय है। देश के कई मंदिरों ने यह व्यवस्था कर रखी है। किसी वीआइपी के आने पर उसे लाइन से अलग हटा कर खास दर्शन करा दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर आम श्रद्धालुओं को दर्शन के लिए लंबा इंतजार करना होता है और परेशानी उठानी पड़ती है। इससे आम लोग खुद को भेदभावपूर्ण व्यवहार का शिकार मानते हैं।

सभी मंदिरों में नेता, मंत्री, कलाकार, उद्योगपति, खिलाड़ी, अधिकारी आदि कोई भी हो, उसे आम लोगों की तरह लाइन में लगकर दर्शन करने चाहिए। हमें 'वेरी इंपोर्टेंट पर्सन' के स्थान पर 'एवरी पर्सन इज इंपोर्टेंट' की सोच विकसित करनी होगी। चलने में असमर्थ बुजुर्ग और दिव्यांग श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए पृथक से दर्शनों की व्यवस्था करना उचित होगा।

● *राजेंद्र कुमावत, जयपुर*

विषमता का विकास

भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन के मुताबिक पूंजीवाद खतरे में है। उनका कहना है कि पूंजीवाद को जो खतरा है उसका कारण बढ़ती असमानताएं हैं। यह बात काफी हद तक सही भी साबित होती नजर आ रही है क्योंकि 2018 की ऑक्सफैम रिपोर्ट के मुताबिक भारत की कुल जनसंख्या के एक प्रतिशत लोगों के पास देश का 73 फीसद धन है। इस रिपोर्ट का यह भी कहना है कि 2006 से 2015 तक जहां एक सामान्य मजदूर की वार्षिक आय में केवल दो प्रतिशत की वृद्धि हुई है वहीं लखपतियों की आय में छह गुना अधिक वृद्धि हुई है।

दरअसल,भारत में 1991 के बाद उदारवाद, निजीकरण और वैश्वीकरण आने से विकास तो हुआ लेकिन इस विकास के पथ पर एक पक्ष पीछे छूटता चला गया जिसे लोग आज असमानता के रूप में जान रहे हैं। भारत उदारवाद, निजीकरण और वैश्वीकरण के सिद्धांत के अनुसार शिक्षा को माहौल नहीं बना सका। नतीजतन, जनसंख्या बढ़ती चली गई और लोगों के पास कौशल की कमी होती चली गई जिससे यहां व्यापक असमानता नजर आती है।

● *अभयजीत कुमार सिंह, दिल्ली*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com